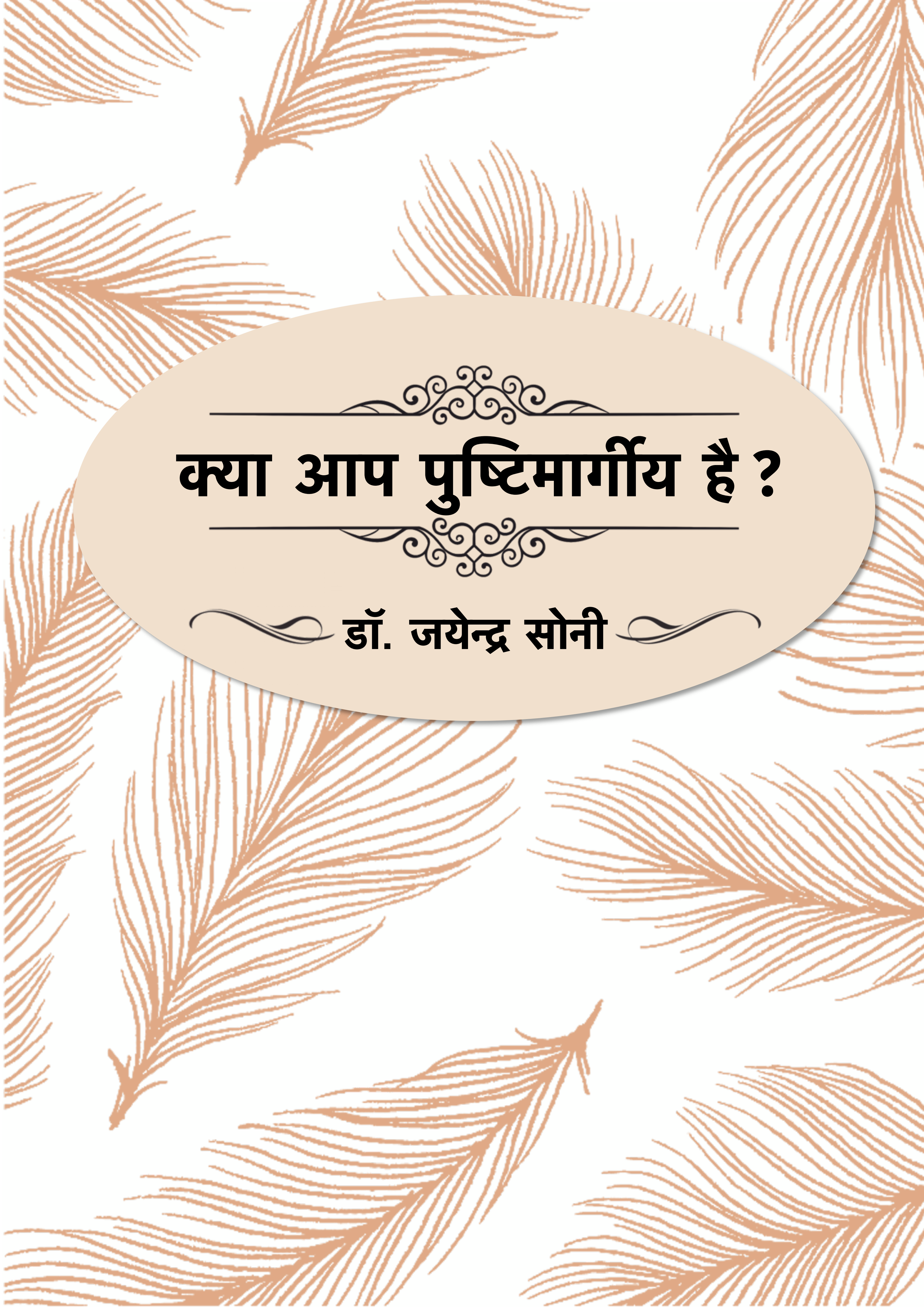

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ?

डॉ. जयेन्द्र सोनी

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ?

(*"क्या आप पुष्टिमार्गीय है ?"* was one of Dr. Jayendrabhai Soni's message segments which was delivered on mediums like Whatsapp groups and his Facebook account. Here is a collated document of all the messages related to this segment.)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है (१) ?

****

आईए, हम हमारे अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

हम मनुष्य है।
मनुष्य होना अपने आप में एक विशेषता है।
क्योंकी -
भगवान ने हमे बुद्धि दी है।
भगवान ने हमे ज्ञान दिया है।
भगवान ने हमे 'विवेक' दिया है।
ईसीके कारण हम बहुत कुछ सुनते, देखते, पढ़ते है।
उसके उपर हम सोचते भी है।
हम हमारे बारेमें, जगतके बारेमें कभी भगवानके बारेमें भी सोचते हैं।
हम कभी गंभीरतापूर्वक बार-बार विचार विमर्श भी करते है।
मनुष्यकी योनी सबसे उत्तम है, क्योंकि वह सोच सकता है।
यह खुबी ओर अन्य किसी प्राणी में नहीं है।
इसीलिए मनुष्य ने काफी तरक्की की है, जो अन्य प्राणीयोने नहीं की।
इसीलिए मनुष्य सभी प्राणीओ में श्रेष्ठ है।
मनुष्यने सुव्यवस्थित समाज बनाया है।
मनुष्यने शिक्षण व्यवस्था खड़ी की है।
मनुष्य ने अपने संरक्षण का प्रबंध किया है।
मनुष्यने अपने निर्वाहके साधन जुटाए हैं।
मनुष्यने अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान किये है।
मनुष्य ने सृष्टिका रहस्य जानने का अथाग प्रयास किया है।
यह सब सृष्टिकी उत्पत्तिके समयसे लगातार चल रहा है।
विश्व के अनेक महानुभावो का उसमें योगदान है।
विश्व के विभिन्न प्रदेशोके विचारकोने अनेक विचारधाराए प्रस्तुत की है।
भारतके अनेक ऋषि मनीषिओने अनेक विद्याएं विकसित की है।

विभिन्न साधना द्वारा अनेक साधकोने 'सत्य' को खोजा है, पहेचाना भी है।
हमारे ऋषि-मुनियों ने कठोर तपस्या कर के 'परम तत्त्व' को जाना है
वे ऋषि - माहात्माए निश्छल, निश्वार्थ, सत्य-संकल्प थे।
उनका मंतव्य निष्पक्ष था, अत: उसे विश्वसनीय कहा जा सकता है।
ऋषि-मुनियों द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान को ही 'वेद' कहते हैं।
'वेद' भारतीय संस्कृति की धरोहर है।
'वेद' किसी एक व्यक्तिके वचन नहीं, यह संकलित किया हुआ 'तत्त्वज्ञान' है।
सृष्टिमें जो कुछ 'सत्' तत्व है, उसे हम 'परम तत्त्व' कह सकते हैं।
'परम तत्त्व' समग्र सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त होने से उसे 'ब्रह्म' कहा गया है।
वेद के अंतिम विभाग को 'वेदांत' अथवा 'उपनिषद' कहते हैं।
उपनिषद ज्ञान का भंडार है।
उपनिषद में 'ब्रह्म' को 'एकमेवाद्वितियम्' बताया गया है।
अर्थात् 'ब्रह्म' के अलावा सृष्टिमें अन्य किसीका अस्तित्व नहीं है।
स्पष्ट है,- इस दृश्यमान सृष्टि की समग्रता को ही 'ब्रह्म' कहते है।
वह 'परम तत्त्व' जो भी है, इस सृष्टि में अंतर्निहित है, उससे अभिन्न है।
तात्यर्य है की विश्व में जो भी जीव-जड पदार्थ है, वे उस 'ब्रह्म' के ही रुप है।

स्वाभाविक प्रश्न होता है कि 'ब्रह्म' का वास्तविक स्वरूप कया है ?

क्रमशः। (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (२)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्त्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'स्वाभाविक प्रश्न होता है कि "ब्रह्म" का वास्तविक स्वरूप करता है ?'

इसका जवाब हमें 'वेद' में से प्राप्त होता है।
उपनिषद कहता है - ब्रह्म 'सच्चिदानंद' स्वरूप है।
'सत्' (अस्तित्व), 'चित्' (चैतन्य), 'आनंद', ये तीन उसके धटक तत्व है।
'जड' पदार्थोका 'अस्तित्व' है, अर्थात् उसमें 'सत्' तत्त्वका अंश है।
प्राणीसृष्टिका 'अस्तित्व' है और उनमें 'चैतन्य' भी है।
अर्थात् 'प्राणीसृष्टि' में 'सत्' और 'चित्' दोनों तत्त्वोके अंश है।
सभी प्राणी 'आनंद' (सुख) की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है।
'आनंद' ब्रह्म का मूलभूत तत्त्व है।

उपनिषद 'पूर्ण आनंद' को ही 'ब्रह्म' की संज्ञा देता है।
उपनिषद 'पूर्णानंद' को ही 'परम तत्त्व' - 'ब्रह्म' बताता है।
'पूर्णानंद' वह हैं, जिसमेंसे 'पूर्णानंद' निकालने परभी 'पूर्णानंद' शेष रहता है।
वह 'पूर्णानंद' को ही उपनिषद ने 'कृष्ण' की संज्ञा दी है।
क्योंकी 'कृष्ण' शब्दकी व्यत्पत्ति 'कृष्' और 'ण' अक्षरो से है।
'कृष्' का अर्थ 'सत्' होता है, 'ण' का अर्थ है 'आनंद'।
अर्थात् 'कृष्ण' का तात्पर्य 'सदानंद' है।
'गीता' में स्ययं भगवान श्रीकृष्णने खुदको 'ब्रह्म' बताया हैं।
भागवत भी कहता है -'कृष्ण ही भगवान' है।
'भगवान' ब्रह्म का ही पर्यायवाची नाम है।
'ब्रह्म' को सृष्टिके संचालक के रूपमें 'परमात्मा' कहते है।
प्राणी मात्र में भी 'परमात्मा' का वास होता है, जिसे 'अतर्यामी' कहते हैं।
जब 'परमात्मा' की कोई 'भक्ति' करता है, तब उसे 'भगवान' कहते हैं।
स्पष्ट है 'ब्रह्म - परमात्मा -भगवान' एक ही 'परम तत्त्व' के नाम है
'ब्रह्म' रुप से अव्यक्त और व्यापक होने से वह 'निर्गुण - निराकार' है।
भक्तके आगे प्रकट होने पर वह 'भगवान' के रुपमें 'सगुण-साकार' होता है। 'भगवान' में ऐश्र्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य ये षडगुण प्रकट होते हैं।
'कृष्ण' उन दिव्य गुणयुक्त 'भगवान' का ही 'सगुण-साकार' स्वरुप है।
अर्थात् 'भगवान कृष्ण' ही 'सच्चिदानंद' परब्रह्म - परमात्मा है।

तब फीर यह दृश्यमान 'जगत' क्या है ? कैसे अस्तित्व में आया ?
'उपनिषद' इसका खुलासा करता है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (३)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'उपनिषद इसका खुलासा करता है।'

तब मात्र 'सत्' था, और कुछ नहीं था।
'सत्' से तात्पर्य है - 'परम तत्त्व' का 'अस्तित्व'।
तब वही 'सच्चिदानंद' ब्रह्म अकेला ही था।
'सच्चिदानंद' रूप होनेसे उसमें 'आनंद' अमाप, प्रचुर था।

लेकिन कोई 'अकेला' अपने आनंद का अनुभव नहीं कर पाता।
उसके लिये उसे 'दुसरे' की अपेक्षा होती है।
'ब्रह्म' ने भी दुसरे की ईच्छा की।
उसने सोचा - "मैं ही ँअनेक बन जाऊं"।
'ब्रह्म' मे 'सर्वभवनसामर्थ्य' नामकी शक्ति है, जिसे 'माया' कहते हैं।
उसने अपनी 'माया-शक्ति' को काम पर लगाया।
जैसे अग्निमेंसे विस्फुल्लिंग निकलते हैं -
उसी तरह ब्रह्म में से उसके 'सत्', 'चित्', और 'आनंद' अंश अलग हुए।
'सत्' अंश अनेक 'जड' पदार्थ बने।
'चित्' अंश असंख्य प्राणीसृष्टि में स्थित 'जीवात्मा' बने।
'आनंद' अंश अनंत परमात्मा स्वरूप 'अंतर्यामी' बने।
प्राणीमात्र में 'जीवात्मा'के संग 'अंतर्यामी' भी रहता है।
इसी 'जड-जीवात्मक' सृष्टि को ही 'जगत' कहतें है।
स्पष्ट है - खुद ब्रह्म ने ही अपने आपमें से इस 'जगत' का सर्जन किया है।
कह सकते हैं - 'सच्चिदानंद ब्रह्म' ने ही 'जगत' का रुप धारण कर लिया है।
अत: 'ब्रह्म' और 'जगत' के बीच 'तादात्म्य संबंध है।
लेकिन 'ब्रह्म' को तो अपने 'आनंद' का अनुभव करना था, मजा लेनी थी।
उसे मात्र खेल करना था, जिसे 'लीला' कहते हैं।
उसने एक करामत की।
उसने 'जड' पदार्थोमें मात्र 'सत्' अंश प्रकट रखा।
उनमें से 'चित्' और 'आनंद' के अंशों को उसने छीपा लिया।
वैसे ही 'प्राणी सृष्टि' में 'सत्' और 'चित्' अंशो को प्रकट रखें।
और उनमें 'आनंद' अंश को छीपा लिया।
इस तरह 'जड-जगत' निरानंद हुवा, 'जीवात्मा' गुप्तानंद हुवा।
हम कह सकतें हैं -
ब्रह्म असंख्य 'जड' और 'जीवात्मा' के रूप और नाम धारण करके -
जगतमें क्रीडा कर रहा है।
इस प्रकार के अद्भुत विचित्र खेल को ही 'लीला' कहते हैं।
इसका प्रयोजन कुछ भी नहीं, मात्र निर्दोष आनंद !
जैसे लोकमें बच्चे अनेक खेल खेलते हैं।
हम सभी 'जीवात्मा' उसकी 'सृष्टि-लीला' के मोहरे - पात्र है।
जैसे वह नचावे, हमें नाचते है, कठपुतली की तरह।
वह दिग्दर्शक है, हम अभिनेता हैं।
हमे वह करना होता है, जो वह हमसे कराना चाहता है।

उसने किसीको चोर बनाया है, किसीको सिपाही।
किसीको राजा बनाया है, दुसरो को प्रजा।
वास्तवमें वह खुद ही चोर, सिपाही, राजा, प्रजा , वगैरे सबकुछ बना है।
बस ऐसे ही अनंत कालसे यह 'सृष्टि-लीला' चल रही है।

तो फिर यह जन्म-मृत्यु का चक्कर क्या है ?
हमें सुख-दु:ख का अनुभव क्यों होता है?

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (४)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'तो फिर यह जन्म-मृत्यु का चक्कर क्या है ?
हमें सुख-दुख का अनुभव क्यों होता है ?

हमारे शास्त्र इसे समझाते है।
""

ब्रह्मकी शक्ति 'माया' के दो रुप है - 'विद्या' और 'अविद्या'
ब्रह्म अपनी 'सृष्टिलीला' में इन 'विद्या-अविद्या' शक्ति का उपयोग करते है।
'विद्या' ज्ञान स्वरुपा शक्ति है, जिनके अंग है -
पंचपर्वा - वैराग्य, सांख्य, योग, तप, और भक्ति।
'अविद्या' अज्ञान स्वरुपा शक्ति है, उसके भी पांच पर्व (अंग) है -
देहाध्यास, ईन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अंत:करणाध्यास, स्वरूपविस्मृति।
'अध्यास' का अर्थ है - 'भ्रांति', गलत समझ।
अध्यासके कारण हम स्वयंको देह-ईन्द्रिय-प्राण-अंत:करण मानने लगते हैं।
यह हमारा 'स्वरुप अज्ञान' है।
हम भूल जाते है की वास्तव में तो हम ब्रह्म के अंश एक 'आत्मा' रूप है।
इसे 'स्वरूप विस्मृति' कहतें है।
वास्तविकता यह है की - जब जीवात्मा ब्रह्मसे अलग हुवा -
उस क्षण तो, वह ब्रह्म का अंश होने से 'सच्चिदानंद' स्वरूप ही था।
उसमें भगवानके ऐश्वर्यादि षड्गुण विद्यमान थे।
लेकिन, जैसे चिनगारी पर राख जम जाती है -

जीवात्मा ब्रह्मसे अलग होते ही उसमें से वे 'षड्‌गुण' तिरोहित हो गये।
इसीलिए वह दीन, हीन, पराधिन, दु:खी, अज्ञानी, विषयासक्त हो गया।
यही कारण है - हमें अनेक प्रकारकी आपत्तियां झेलनी पड़ती है।
हमे अनेक विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है
ये जीवात्मा का भगवानकी 'अविद्‌या शक्ति' की सन्निधि का प्रभाव है।
हमे उपरोक्त पांच प्रकारके अध्यास लगने से गलतफेहमी हो जाती है।
हम हमारे देहादि को अपना वास्तविक स्वरूप मानने लगते हैं।
हमारेमें 'अहंता-ममता' का, 'मैं और मेरा' ऐसा भ्रांत भाव पनपता है।
ऐसी खोटी समझ को ही 'संसार' कहते है, जो मिथ्या है।
हकिकतमें हमें 'जन्म-मरण' का अनुभव 'अविद्‌या'के कारण ही होता है।
हमारी 'आत्मा' तो भगवदंश होने से उसकी मृत्यु नहीं होती।
हमारा देह भी 'सदंश' में से उत्पन्न भगवद्‌ प्रपंच का हिस्सा है।
वह पंचमहाभूत का बना होनेसे जला देने पर पंचमहाभूत में मिल जाता है।
अत: देह की भी मृत्यु नहीं है।
हकिकतमें हम देहादिको 'स्वयं' का अस्तित्व मानते हैं -
इसलिये हमें भ्रांति होती है की हमारी मृत्यु हुई।
वास्तवमे न तो हमारी आत्मा की मृत्यु है, न हमारे देह की।
अविद्‌यासे उत्पन्न उस भ्रांत स्थिति को ही 'मृत्यु' की संज्ञा दी गई है।
वास्तवमें तो हमारी आत्मा एक शरीर छोड़ कर दुसरा शरीर ग्रहण करती है।
तब उसे 'जन्म' कहा जाता है।
ऐसी जन्म-मरण की घटना अविरत चलती रहती है।
अविद्‌याके कारण अज्ञानवश हम संसार के विषयों में आसक्त हो जाते है।
हम भूल जाते है की हकीकत में 'हम भगवान की सृष्टिलीला के अंगभूत है'।
हमको तो हमें दिया गया कोई विशिष्ट पात्रका अभिनय मात्र करना होता है।
लेकिन हम सचमुच में खुदको वह 'पात्र' ही समझ बेठते है।
तदर्थ, हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा के रूप में प्रतिक्रया देतें हैं।
बस यही हमारे दु:ख का कारण है।
हमारी 'अहंता-ममता' ही हमारे सांसारिक दु:खो का कारण है।
हमे न तो 'अहंकार' रखना चाहिए, न किसी वस्तु या व्यक्ति में आसक्ति।
हमे कर्तव्य-बुद्‌धि से सभी कर्म करने चाहिए।
हकिकतमें, जैसे भगवान ने गीता में कहा है - 'कर्म' तो हमें करना ही है।
कर्म किये बिना कोई रह ही नहीं सकता।
लेकिन हमें कर्म में आसक्त नहीं होना है। हमे 'निष्काम' कर्म करना है।
इसलिए कहा है - "मात्र कर्म कर, फल की आशा मत रख"।

'कर्म' ही बंधन का कारण है, और 'कर्मफल' का त्याग - 'मुक्ति का उपाय'।
यही गीता का संदेश है, संत, माहात्मा, आचार्योका उपदेश है

तो फीर सवाल होता है - 'कर्म' के बंधन से हमे मुक्ति कैसे मिले ?
शास्त्रोने ईसके विभिन्न उपाय बताए हैं।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (५)

****

आईए हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'तो फिर सवाल होता है - 'कर्मके बंधनसे हमें मुक्ति कैसे मिले ?'

शास्त्रोने ईसके विभिन्न उपाय बताए हैं।

शास्त्रोने मुक्तिके मुख्य तीन मार्ग सूचित किये है।
'कर्ममार्ग' - वेदमें निर्दिष्ट 'यज्ञ-कर्मो का निष्काम भाव से अनुष्ठान करना।
'ज्ञानमार्ग' - वेदादि शास्त्रो द्वारा 'ब्रह्म' का 'यथार्थ ज्ञान' प्राप्त करना।
'भक्तिमार्ग' - शास्त्रोक्त साधनों से भगवान की विधिवत् उपासना करना।
इन तीनों मार्गों में से कोई एककी साधना 'मोक्ष-प्राप्ति' कराने में सक्षम है।
इनके अलावा सांख्य - योग आदि से भी मोक्ष प्राप्ति हो सकती है।
'मोक्ष' की सामान्य परिभाषा है -'दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति'।
'मोक्ष' से तात्पर्य है 'जन्म-मरण' के चक्कर में से छुट जाना।
'मोक्ष' है - संसार के बंधनो से मुक्त हो जाना।
'मोक्ष' है - पून: ब्रह्म में लीन हो जाना, भगवान के साथ जुड़ जाना।
'मोक्ष' की स्थिति में सुख-दु:ख का अनुभव नहीं होता है।
'मोक्ष' में जीवात्माको 'ब्रह्मानंद' की अनुभूति होती है।
'मोक्ष' को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है।

तो हम कोनसा उपाय करें ?

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (६)

****

आईए हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने!

****

तो हम कोनसा उपाय करें ?

'मोक्ष' की प्राप्ति के 'अध्यात्म- मार्गो' पर चलने के लिये 'गुरू' अपेक्षित है।
प्रत्येक 'अध्यात्म मार्ग' के गुरू भिन्न-भिन्न होते हैं।
प्रत्येकने अपने मार्गकी साधना कर उपदेशककी योग्यता प्राप्त की होती है।
'गुरू' साधक का मार्गदर्शक होता है।
सच्चे गुरू में शिष्यको 'फलप्राप्ति' कराने की क्षमता होती है।
इसीलिये 'फलप्राप्ति' के लिये 'योग्य गुरू' का चयन अत्यावश्यक होता है।
भारत में अनेक आचार्य हुए हैं, जो विभिन्न भगवदवतार माने गये है।
उन्होने शास्त्रो का मननपूर्वक अध्ययन कर अपने 'मत' प्रकट किये है।
उन्होंने शास्त्रोके निचोडरूप अपने सिद्धांत प्रतिपादित किये है।
सभी ने अपनी तात्त्विक विचारधारा अनुसार 'मोक्षके मार्ग' बतायें है।
विभिन्न आचार्योने अपने मतानुसार 'संप्रदाय' स्थापित - प्रवर्तित किये है।
उन्होंने अपने अपने संप्रदाय के उपदेशक की भूमिका निभाई है।
उन्होंने 'गुरु' के रूपमें मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है।
अनेक आचार्य 'भक्तिमार्ग' के प्रवर्तक हुए हैं।
सभी ने अपने अपने ढंग से 'भक्तिमार्ग' का स्वरूप समझाया है।
सभी ने अपने अपने विचारो से 'साधना प्रणाली' और 'फल' बतायें है।
प्रत्येकके 'लक्ष्य' अलग है, उसकी 'साधना-प्रणाली' भिन्न है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (७)

****

आईए हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'तो हम किसे हमारा गुरु बनायें ?:

पंद्रहवी शताब्दी में एक विचक्षण आचार्य प्रादुर्भूत हुए थे।
वे है - 'पुष्टिभक्तिमार्ग' पे स्थापक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी।
उन्हे 'श्रीकृष्णास्य' कहा जाता है। उन्हें 'वैश्वानर' भी कहतें है।
क्योंकी वे श्रीकृष्णके मुखारविंद के अवतार माने जाते हैं।

भारतीय तत्त्वज्ञान के प्रथम श्रेणीके तत्त्वविदोमें उनका अग्र स्थान है।
वेदादि भगवद् शास्त्रोके शब्द-प्रमाणो की एकवाक्यताके आधार पर-
उन्होंने अपना दार्शनिक मत - "शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद" प्रतिपादित किया है।
तदंतर्गत उन्होंने भगवद् अनुग्रह आधारित 'पुष्टिमार्ग' स्थापित किया है।
उन्होंने भगवान श्रीकृष्णकी निर्गुण भक्तिका मार्ग प्रवर्तित किया है।
क्योंकी 'श्रीकृष्ण' निराकार सर्व-व्याप्त ब्रह्म का ही साकार 'आनंद' रुप है।
श्रीकृष्ण की 'प्रेमलक्षणाभक्ति' से ही उनका साक्षात्कार संभव हो सकता है।
'प्रेमलक्षणाभक्ति' ही श्रीकृष्ण के स्वरूपानंदकी अनुभूति करा सकती है।
क्योंकी श्रीकृष्ण "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादि" स्वरूप है।
श्रीकृष्ण ही 'शाश्र्वत आनंद' का स्रोत है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (८)

****

आईए, हम अपना अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

हमने पूर्वमें देखा -

भगवान ने इस सृष्टि का सर्जन अपनी 'लीला' के लिये कीया है।
उन्होंने अपने ही 'आनंद' की अनुभूति करने अनेक रूप-नाम धारण किये है।
इसलिये भगवान ने विविध प्रकार की जड-सृष्टि उत्पन्न की है।
भगवान ने 'जीवसृष्टि' भी विभिन्न प्रकार की प्रकट की है।
क्योंकी 'लीला'के लिये - खेलके लिये विविधता और विचित्रता आवश्यक है।
अन्यथा खेल 'नीरस' हो जाय, लीला में 'आनंद' प्राप्त न हो शके।
यह बात हम लोक में भी अनुभव करतें हैं।
भगवान ने दो प्रकारकी, 'दैवी-आसुरी' सृष्टि उत्पन्न की है - गीता में कहा है।
'दैवी सृष्टि',में सद् वृत्तियां होती है।
उनमें सत्यनिष्ठा,पवित्रता,दया,क्षमा,संयम,परोपकार आदि सद्गुण होते हैं।
उनमें अपना आत्मोद्धार करने की रुचि एवम् योग्यता होती है।
सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर, मोक्ष प्राप्त करनेकी उनमें क्षमता होती है।
'आसुरी सृष्टि' में असद् वृत्तियां होती है।
उनमें दंभ,पाखंड,क्रोध,लोभ,अहंकार,कठोरता आदि दुर्गण होते हैं।
उनमें सांसारिक सुखों के भोग की रुचि होती है।

'आसुरी सृष्टि' के जीव प्रलय पर्यंत जन्म-मरणके चक्करमें घुमते रहते हैं।
महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने इन सृष्टिओके तीन प्रकार बतायें है।
दैवी सृष्टिके दो प्रभेद हैं - 'पुष्टिसृष्टि' और मर्यादासृष्टि'।
आसुरी सृष्टि को वे 'प्रवाहिसृष्टि' कहतें है।
इन तीनों सृष्टिकी उत्पत्ति, रुचि, अधिकार और फलप्राप्ति भिन्न भिन्न है।
'पुष्टिसृष्टि' के जीव भगवानकी स्वरुपसेवा - गुणगान आदि में रुचि रखतें हैं।
अतः उन्हें भगवान का स्वरुपानंद पानेकी अभिलाषा रहती हैं।
'मर्यादासृष्टि' के जीव को शास्त्रोक्त विधानों में विशेष आस्था होती है।
अतः वे शास्त्रमें निर्दिष्ट जप, तप, दान, पुण्य आदि साधनोमें रुचि रखतें हैं।
इनको 'मोक्ष' प्राप्त करने की कामना होती है।
'प्रवाहिसृष्टि' संसारासक्त होनेसे मात्र मोजशोख करने में ही रुचि रखतें है।
इस प्रकार के जीवात्मा को नरकादी फल की प्राप्ति होती है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (९)

****

आईए हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने!

****

पुष्टिजीवो को भगवान के स्वरुपानंदकी प्राप्ति कैसे होय !

भगवान कृष्ण 'सदानंद' है।
अतः स्वाभाविक है की -
भगवानके आनंद को प्राप्त करनेके लिये 'भगवान कृष्ण' को पाना चाहिये।
इसलिये भगवान कृष्ण हमें कैसे मिले, वह जानना चाहिये।
उपनिषद कहता है - भगवान प्रवचन, बुद्धि, अथवा श्रवणसे नहीं मिलते।
लेकिन - भगवान स्वयं जिसका 'वरण' करें, वही उसे प्राप्त कर सकता है।
अर्थात् भगवान स्वयं जिसके पर 'कृपा' करें, उसे वे मिल सकतें हैं।
तात्पर्य यह की -
'कृपा-प्राप्त' जीवात्मा ही भगवान के 'स्वरूपनंद' का अनुभव कर सकता है।
भगवान स्वतंत्र है। लेकिन -
भगवान भक्तके निष्काम प्रेम में परवश हो जाते हैं -'भागवत' कहता है।
अतः यदि भगवान में निश्छल प्रेम हो तब वे प्रसन्न हो सकते हैं।
भगवान भक्तके सच्चे प्रेम से प्रसन्न होय, तब वे उस पर कृपा कर सकते है।

भगवान के प्रति प्रेम को ही 'भक्ति' कहते हैं।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१०)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'भक्ति' की व्याख्या इस प्रकार बताई गई है -
'भगवानके माहात्म्य-ज्ञान सहित, उनमें सुदृढ, सर्वतोधिक स्नेह' भक्ति है।
अर्थात् 'भक्ति'के दो महत्वपूर्ण अंग है -
भगवान का माहात्म्य ज्ञान होना आवश्यक है, और -
भगवान में कभी न डीगे ऐसा और सबसे उत्कट प्रेम होना चाहिए।
भगवान के 'माहात्म्यज्ञान से उनकी 'शरणागति' सिद्ध होगी।
भगवान के प्रति उत्कट स्नेह के कारण उनमें 'समर्पण' भाव उत्पन्न होगा।
'शरणागति' और 'समर्पण' भगवान के प्रति प्रेम का द्योतक है।
'भक्ति' के द्वारा भगवान को प्राप्त करनेके मार्गको 'भक्तिमार्ग' कहतें है।
शास्त्रोक्त साधनों द्वारा की जाती भक्ति को 'मर्यादा-भक्ति' कहतें है।
भागवत में नव प्रकारकी भक्ति 'नवधा भक्ति' का निरुपण किया गया है -
श्रवण,कीर्तन,स्मरण,पादसेवन,अर्चन,वंदन,दास्य,सख्य,आत्मनिवेदन।
ये प्रत्येक 'भक्ति' के साधन है, जिनसे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।
भागवत में इसकेअनेक उदाहरण प्राप्त होते है।
इन 'साधन-भक्ति' से विलक्षण 'पुष्टि भक्ति' श्रीवल्लभाचार्यजीने समझाई है।
'पुष्टिभक्ति' भक्तके साधन पर निर्भर नहीं होती।
'पुष्टिभक्ति' स्वयं भगवान की 'पुष्टि' अर्थात् 'कृपा' पर अवलंबित होती है,
'पुष्टिभक्ति' में भक्त का भगवान के प्रति प्रेम का प्राबल्य होता है।
अतः 'पुष्टिभक्ति' को 'प्रेमलक्षणाभक्ति' कहतें है।
नवधाभक्ति के नव सोपान पार कर दशवी 'प्रेमलक्षणाभक्ति' प्राप्त होती है।
अतः 'नवधाभक्ति' 'प्रेमलक्षणाभक्ति' के अंग रुप भी है।
'श्रवण-कीर्तन-स्मरण', 'नामसेवा' रूप भक्ति हैं।
'पादसेवन-अर्चन-वंदन', बहिरंग सेवारूप भक्ति है।
'दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन', अंतरंग सेवारूप भक्ति है।
'प्रेमलक्षणाभक्ति' को ही 'पुष्टिभक्तिमार्ग' अथवा 'पुष्टिमार्ग' कहतें है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (११)

****

आईए हम अपने अस्तित्व कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'पुष्टिमार्ग' का तात्पर्य है - भगवान की 'पुष्टि' द्वारा भगवद् प्राप्ति का मार्ग।

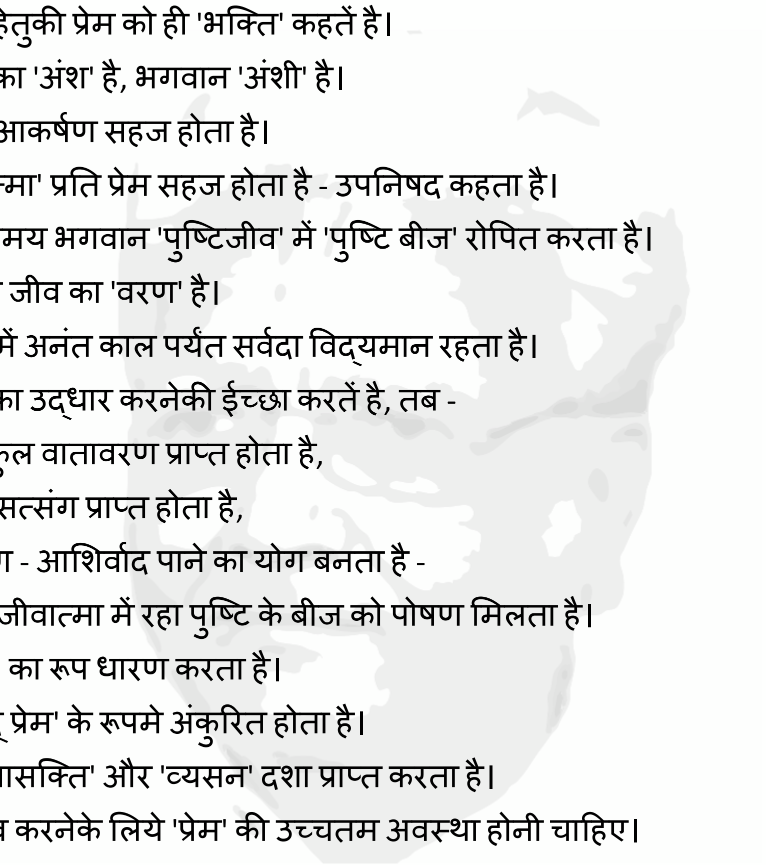

भगवान के प्रति अहेतुकी प्रेम को ही 'भक्ति' कहतें है।
जीवात्मा भगवान का 'अंश' है, भगवान 'अंशी' है।
अंश का अंशी प्रति आकर्षण सहज होता है।
'आत्मा' का 'परमात्मा' प्रति प्रेम सहज होता है - उपनिषद कहता है।
सृष्टि की उत्पत्ति समय भगवान 'पुष्टिजीव' में 'पुष्टि बीज' रोपित करता है।
यही भगवान द्वारा जीव का 'वरण' है।
वह बीज जीवात्मा में अनंत काल पर्यंत सर्वदा विद्यमान रहता है।
जब भगवान जीव का उद्धार करनेकी ईच्छा करतें है, तब -
उसे भक्ति के अनुकुल वातावरण प्राप्त होता है,
कोई भगवदीय का सत्संग प्राप्त होता है,
कोई सद्गुरू का संग - आशिर्वाद पाने का योग बनता है -
जिसके कारण उस जीवात्मा में रहा पुष्टि के बीज को पोषण मिलता है।
वह बीज ही 'भक्ति' का रूप धारण करता है।
वह बीज ही 'भगवद् प्रेम' के रूपमे अंकुरित होता है।
वह प्रेम उत्तरोत्तर 'आसक्ति' और 'व्यसन' दशा प्राप्त करता है।
भगवान का अनुभव करनेके लिये 'प्रेम' की उच्चतम अवस्था होनी चाहिए।
भक्त का चित्त भगवान में तन्मय हो जाय यह अपेक्षित होता है।
ऐसी तन्मयता को श्रीवल्लभाचार्यजी 'मानसी सेवा' कहतें है।
कृष्ण में चित्त का जुड़ना ही फलरूपा 'मानसी सेवा' है।
'भगवद् प्रेम' रूपा 'भक्ति' की सार्थकता 'कृष्ण सेवा' में ही है।

लेकिन क्या हमारा चित्त भगवान में लगाना संभव है ?

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१२)

****

आईए हम अपने अस्तित्व कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

लेकिन क्या हमारा चित्त भगवान में लगाना संभव है ?

हम तो 'अविद्या ग्रस्त' होने से हमारा वास्तविक स्वरूप ही भूल गये है।
'अहंता-ममता' के कारण हम तो संसारासक्त हो गये है।
हमें खुदसे, अपने परिवार, और पदार्थो से लगाव होना स्वाभाविक है।
हमारी 'अहंता-ममता' छुटनी मुश्किल ही नहीं, असंभव सी है।
भगवानके प्रति हमें प्रेम अवश्य है, लेकिन परिवारको हम छोड़ नहीं सकतें। परिवार का निभाव करना भी गृहस्थका दायित्व होता है।
उसके लिये उपार्जन करना भी आवश्यक है।
अन्यथा हमारे परिवार का निर्वाह कैसे हो सकता है।

तो इसका उपाय क्या ?

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१३)

****

आईए हम अपने अस्तित्व कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

भगवन्मुखार्विंद के अवतार, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी एक समर्थ गुरु है, एक विलक्षण मार्गदर्शक हैं।
अनेक शास्त्रोका मंथन करके उन्होंने अपनी विचारधारा प्रदिपादित की है।
उन्होंने शास्त्रोक्त 'मर्यादा भक्तिमार्ग' से विलक्षण -
एक विशिष्ट - प्रकारका 'पुष्टिभक्तिमार्ग' प्रस्थापित - प्रवर्तित किया है।
उन्होंने 'पृथक् शरणमार्ग' प्रवर्तित किया है।
तद्विषयक अपने सिद्धांत उन्होंने अनेक ग्रंथोकी रचना करके समझाये हैं।
इस मार्गका अनुसरण करके भगवद्-प्राप्त भक्तोके प्रमाण उपलब्ध है।
स्पष्ट है, यह 'शास्त्र-प्रमाणित' मार्ग है।

उनकी कुछ मूलभूत आज्ञाएं इस प्रकार है -

"परंब्रहम तो कृष्णो हि" (सि.मु.)

"कृष्णसेवा सदा कार्या'', यह मेरा सिद्धांत है। - (सि.मु.)
"अनुग्रह पुष्टिमार्गे नियामक" (सि.मु.)
"पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्'' (पु.प्र.म.भेद)
"सर्वदा सर्वभावेन भजनियो व्रजाधिप,
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यक्वापि कदाचन" (चत:श्लोकी)
"गृहे स्थित्वा स्वधर्मत:" (भ.व.)
"निवेदिभि: समर्पेव सर्वं कुर्यादिति स्थिति:" (सिं.र.)
"पूर्णानंदो हरिस्तस्मात् कृष्ण एवं गतिर्मम" (कृष्णाश्रय)
"निजेच्छात करिष्यति" ; "त्रिद:ख सहनं धैर्यम्" ; -
"सर्वथा शरणं हरि:" (वि.धै.आ.)
"स्वधर्माचरणं शक्त्या" (निबंध)
"स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम्" (चतु:श्लोकी)
ईत्यादि.........

क्रमशः। (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१४)

****

आईए हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

श्रीवल्लभाचार्यजीने "कृष्णसेवा सदा कार्या" को अपना सिद्धांत बताया है।
यह वचन सारगर्भित है।

हमारा लक्ष कृष्ण के साथ हमारे चित्त को जोड़ना है।
चित्त को कृष्ण के साथ तन्मय बनाना है।
लेकिन इसमें हमारी 'अहंता-ममता' बाधा बन रही है।
फिर भी हम 'अहंता-ममता' को छोड़ तो नहीं सकतें। कैसे छुटे ?
श्रीआचार्यजी कहतें है -"मत छोड़ो"।
तब फिर क्या करें ?
"उसे कृष्णमें जोडो'" - वे कहतें है।
कैसे ?
कृष्ण की "तनु-वित्तजा" सेवा द्वारा।
क्या होती है -''तनु-वित्तजा सेवा" ?
'तनु' तात्पर्य है 'देह', और 'वित्त'से तात्पर्य है जिसे 'हम हमारा मानते है'।

हमारे देह के कारण हमारा में 'मैं' का भाव 'अहं' प्रकट होता है।
हमारे परिवार, सम्पत्ति ईत्यादि में हमारा 'ममत्व' रहता है।
ये दोनों ही हमारी 'अहंता-ममता' के कारण होते है।
श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं - जिनमें हमारी 'अहंता-ममता' है,
उन्हे ''कृष्ण' की सेवा में लगाओ -
कृष्णकी सेवा अपने घर में परिवार के साथ रहकर स्वयं करो -
कृष्णकी सेवा में अपनी सारी सम्पत्ति आदि सभी पदार्थो का उपयोग करो - इसीको श्रीमहाप्रभुजी 'तनु-वित्तजा' सेवा कहतें है।
'तनु-वित्तजा' सेवा द्वारा, हमारा तन और धन कृष्ण के लिये काम आयेगा।
फिर हमें किसका अहंकार होगा?, किसमें हमारा ममत्व रहेगा ?
जब कुछ भी हमारा - हमारे लिये रह ही नहीं जायेगा !!
अपने देह से स्वयं सेवा करो, 'अहंकार भाव' नष्ट हो जायेगा।
अपने सर्व ममतास्पद पदार्थ सेवा में लातगाओ, 'ममता' नहीं रहेगी।
हमे कुछ छोड़ना नहीं है, मात्र हमारा सबकुछ कृष्णकी सेवा में लगाना है।
ऐसे 'तनु-वित्तजा' सेवा भावपूर्वक करने से हमें कृष्ण में सहज प्रेम होगा।
क्रमशः प्रेम 'आसक्ति' में परिवर्तित होगा ! कृष्ण बार-बार याद आयेगा।
आगे चलकर 'व्यसन दशा' सिद्ध होगी,
जब हमारा मन कहीं और जगह नहीं लगेगा।
अंततः हमारा चित्त 'कृष्णमय' हो जायेगा।
'तनु-वित्तजा' साधनरूपा सेवा है।
चित्त कृष्ण में प्रवण होने पर वह फलरूपा 'मानसीसेवा'में परिणमित होगी।
हमारी 'कृष्णसेवा' की प्रक्रिया यथावत् रहेगी।
लेकिन उसका रूप बदल जायेगा।
'साधन' ही 'फल' बन जायेगा !
'कृष्ण' हमारे चित्त में रममाण हो जायेगा।
हमारे चित्त में सतत् हमें कृष्णकी सन्निधि अनुभूत होगी।
कृष्णके स्वरूपानन्द का हमें अनुभव होने लगेगा।

क्रमश: (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है (१५)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

लेकिन, एक संदेह और होता है।

हम हजारों वर्षोसे जन्म-मरणके चक्कर में घुम रहे हैं।
हमने अनेक योनिओ में जन्म प्राप्त किया होगा।
आजतक अच्छे-बुरे अनेक कर्म हमने किये होंगे।
उन्ही संचित कर्मो के फल हम अद्य पर्यंत भूगत रहे हैं।
इस जन्ममें भी हम प्रारब्ध कर्मोके फल भोग रहे है।
हमारेमें देश-कालादिके कारण अनेक दोष भरे हुए है।
और भगवान 'श्रीकृष्ण' निर्गुण !
क्या दोषयुक्त हमारा 'निर्गण कृष्ण' के साथ जुड पाना संभव है ?
क्या भगवान श्रीकृष्ण की सेवा करने लायक हम है ?
क्या 'भगवान कृष्ण' हमारी सेवा को अंगीकार करेंगे ?
क्या इसका कोई उपाय है ?

यह प्रश्न तो स्वयं श्रीवल्लभाचार्यजी के समक्ष भी प्रस्तुत हुआ था।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१६)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्त्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

यह प्रश्न तो स्वयं श्रीवल्लभाचार्यजी के समक्ष भी प्रस्तुत हुआ था।

तब वे गोकुल में गोविंद घाट पर बिराज रहे थे।
तब उनके मन में यही चिंतन चल रहा था।
भगवान ने उन्हें दैवीजीवो का उद्धार करने के लिए भूतल पर भेजे थे।
लेकिन उन्होंने ने पाया कि दैवीजीव भी संसारासक्त हो गये है।
उन्हें अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गई है।
वे अनेक प्रकार के दोषोसे ग्रस्त हो गये है।
कोई हल नहीं मिल रहा था।
मध्यरात्रिका समय था।
अचानक स्वयं भगवान उनके समक्ष प्रकट हुए।
उन्होंने श्रीवल्लभ को एक मंत्र देकर -
पुष्टिजीवो को शरणमें लेकर उस मंत्र द्वारा दीक्षित करनेकी आज्ञा की ।

और खुलासा किया की-
यह मंत्र प्राप्त करने से जीवात्मा के सभी दोष निवृत्त हो जायेंगे।
उससे उनके दोष भगवत्सेवामें बाधा नहीं करेंगे।
भगवान उनकी सेवा का अंगीकार करेंगे।
इसे 'ब्रह्मसंबंध मंत्र' अथवा 'निवेदन मंत्र' कहतें है।

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१७)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने !

****

'ब्रह्मसंबंध' की आज्ञाका प्रमाण 'सिद्धांत रहस्य' ग्रंथ में मिलता है।
"साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरसः उच्यते" - श्रीमहाप्रभुजी कहतें है
भगवान ने स्वयं खुलासा किया है -
"ब्रह्मसंबंध करणात् सर्वेषां देह जीवयो: सर्वदोष निवृत्ति:"
इस मंत्रका तात्पर्य है -
इस मंत्र द्वारा हमें सर्वप्रथम अपने स्वरूप और स्थिति का ज्ञान होता है।
हम भगवान के अंशरूप जीवात्मा है, ओर अनंत कालसे उनसे बिछड़े है।
हम जो कुछ भी हमारा मानते है - स्त्री, धर, परिवार, संपत्ति, स्वयंको भी -
हम संकल्पपूर्वक भगवान कृष्ण को 'समर्पण' करते हुए निवेदन करतें हैं।
हम स्वयं को 'दास' होने की कबुलात करते हुए 'शरणागति' स्वीकारतें है।
हम स्वयंको 'कृष्ण' के होने की घोषणा द्वारा समर्पित करतें हैं।
यह दीक्षा पवित्र, सारगर्भित एवम् गंभीर है।
क्योंकी हम भगवान कृष्ण के साथ 'वचनबध्ध' हो जाते हैं।
हमारे लिये 'समर्पित जीवन' जीना अनिवार्य बनता है।
वह तभी संभव हो सकता है -
जब हम हमारे धरमें 'कृष्ण' की सेवा करते हुए उनके साथ जीवन बितायें।
इसीलिये हमें हमारे धरमें 'कृष्णसेवा' करनी आवश्यक है।
हमारा 'समर्पण' तभी सार्थक हो सकता है -
जब हम 'समर्पण' किये हुए सभी पदार्थका कृष्णसेवामें 'विनियोग' करें।
हकिकतमें हम पदार्थो का न तो त्याग करतें है, न उसका 'दान'।
हम पदार्थोसे जुड़ी हुई हमारी 'अहंता-ममता' का 'समर्पण' करतें हैं।
हम स्वीकारतें है की जिनमें 'में' और 'मेरा' भाव है, वे कृष्णसेवा के लिये है।

अत: ये 'दान' का प्रकार नहीं, जहां देने के बाद हमारी सत्ता नहीं रहती।
'समर्पण' के कारण हमारी 'अहंता-ममता' कृष्ण के साथ जुड जाती है।
यही 'तनु-वित्तजा' सेवा के उपदेश का तात्पर्य है।

तब हमारे परिवार का निर्वाह हम कैसे करें ?

क्रमशः (डॉ. जयेन्द्र सोनी)

क्या आप पुष्टिमार्गीय है ? (१८)

****

आईए, हम अपने अस्तित्व, कर्तव्य और गंतव्य की सच्चाई जाने ?

****

तब हमारे परिवार का निर्वाह हम कैसे करें ?

ब्रह्मसंबंध करनेके बाद हमें 'असमर्पित वस्तुओ का उपयोग करना वर्ज्य है।
हमें समर्पण की हुई प्रत्येक वस्तुओका -
प्रत्यक्ष / परोक्ष विनियोग कृष्णसेवामे अनिवार्यत: करना चाहिए।
हम भगवान के दास है, हमने भगवान को हमारे स्वामी रूपमे स्वीकारा है।
इसलिए -
जैसे लोकमें स्वामी-सेवक के संबंध के कारण सेवकका व्यवहार निभता है-
हमारा निर्वाह भी भगवद् विनियोग किये हुए पदार्थो से करना होता है।
इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होता।
क्योंकि हम हमारे धरमें बिराजते हुए हमारे स्वामी 'श्रीकृष्ण' के लिये-
और उनके साथ, 'समर्पित-जीवन' जी रहे हैं -
इसलिये हमारे जीवन की सभी प्रवृत्तिओ का केंद्रबिंदु 'कृष्ण' होना चाहिए।
हम पढ़ें - व्यवसाय करें, श्रीकृष्ण की सेवा के साधन जुटाने के लिये।
हम परिवार बसाये, श्रीकृष्ण की सेवा में सहयोगी प्राप्त करने के लिये।
हम विविध कलाओमें प्रविणता प्राप्त करें, हमारे 'कृष्ण'को रिझाने के लिये।

तभी हमारा जीवन 'कृष्णमय' बनेगा।
तभी हमें हमारे आसपास के प्रपंच की विस्मृति होगी।
तभी हमारा कृष्णमे 'निरोध' सिद्ध होगा।
तभी हमें कृष्ण के स्वरूपानंद की अनुभूति होगी।
यही हमारा सच्चा 'गंतव्य' है।

पुष्टिमार्गीय जीवन का यही परम फल है।
यही महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी का पुष्टिजीवो पर अनुग्रह है।
(डॉ. जयेन्द्र सोनी)